फैसले और उम्मीदें

भारत में विदेशी पूंजी लाने के मकसद से सरकार ने एफडीआइ नियमों को और उदार बनाने की दिशा में जो कदम बढ़ाया है वह निश्चित रूप से अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने में मददगार होगा। बुधवार को कैबिनेट की बैठक में जो बड़े फैसले किए गए उनसे साफ है कि देश को मंदी के माहौल से उबारने के लिए इस तरह के आर्थिक उपाय करने जरूरी हो गए हैं। पिछले एक हफ्ते में यह तीसरा मौका है जब अर्थव्यवस्था को सुधारने की लिए तीसरा बड़ा फैसला किया गया है। भारत में इस वक्त निवेश, मांग और खपत तीनों सुस्त हैं और अर्थव्यवस्था के ये तीनों ही कारक मंदी का कारण बने हुए हैं। ऐसे में विदेशी निवेश लाने के लिए एफडीआइ नियमों में ढील देना वक्त की जरूरत बन गई है। सबसे बड़ा फैसला तो यह हुआ है कि एकल ब्रांड खुदरा क्षेत्र के लिए नियमों को आसान बनाया गया है। इस क्षेत्र में तीस फीसद घरेलू खरीद के नियम के दायरे को व्यापक बनाया गया है। इससे एकल ब्रांड कंपनियां अब ऑनलाइन और ऑफलाइन स्टोर साथ-साथ खोल सकेंगी। अब पहले ऑफलाइन स्टोर खोलने की अनिवार्यता खत्म हो जाने से भारत में विदेशी कंपनियों के आने का रास्ता आसान हो जाएगा और उम्मीद की जानी चाहिए कि कई बड़ी कंपनियां भारतीय बाजार में दस्तक देंगी।

आज दुनिया में खुली अर्थव्यवस्था है। ऐसे में कारोबारी नियम भी उदार ही होने चाहिए, बशर्ते राष्ट्र के हितों पर प्रतिकूल असर न पड़ता हो। सरकार ने कोयला क्षेत्र के विकास को रफ्तार देने के लिए कोयला खनन और ठेका विनिर्माण में सौ फीसद विदेशी निवेश का रास्ता साफ कर दिया है। हालांकि कोयला क्षेत्र को लेकर अभी संदेह इसलिए बना हुआ है कि विदेशी कंपनियां इसमें पैसा लगाने से बच सकती हैं। इस वक्त दुनिया की बड़ी कंपनियों की दिलचस्पी हरित ऊर्जा वाली परियोजनाओं को लेकर ज्यादा है। लेकिन ठेका विनिर्माण क्षेत्र में सौ फीसद एफडीआइ अर्थव्यवस्था को गति देने में बड़ी भूमिका निभा सकता है। माना जा रहा है कि इससे विदेशी कंपनियां भारत में अब दूसरी कंपनियों को ठेके देकर अपने उत्पाद भी बनवाएंगी। यही कंपनियां फिर भारत से निर्यात करेंगी तो इससे भारत को दोहरा फायदा होगा। इससे देश में विनिर्माण क्षेत्र में रोजगार के अवसर पैदा होंगे। एक मोटा अनुमान यह लगाया गया है कि ठेका विनिर्माण क्षेत्र में सौ फीसद एफडीआइ के फैसले से 2022 तक देश की जीडीपी में विनिर्माण क्षेत्र का योगदान बढ़ कर पच्चीस फीसद तक हो सकता है जो अभी सोलह-सत्रह फीसद है।

इसके अलावा कैबिनेट ने देश भर में पचहत्तर नए मेडिकल कालेज खोलने का जो बड़ा फैसला किया है, वह निश्चित रूप से वक्त की जरूरत है। आज देश में ज्यादातर जिले खासतौर से ग्रामीण इलाके बुनियादी स्वास्थ्य सुविधाओं से वंचित हैं। इसकी वजह यह रही है कि आजादी के बाद स्वास्थ्य क्षेत्र का बुनियादी ढांचा विकसित नहीं हो पाया है। देश में डॉक्टरों और अन्य चिकित्सा कर्मचारियों की भारी कमी है। ऐसे में अगर बड़ी संख्या में मेडिकल कालेज खुलते हैं तो निश्चित रूप से अस्पतालों में डॉक्टरों की कमी दूर होगी और जिला स्तर पर स्वास्थ्य सुविधाओं का दायरा बढ़ाया जा सकेगा। सबसे ज्यादा फायदा ग्रामीण आबादी को होगा। भारत में चिकित्सा क्षेत्र को नया रूप देने के मकसद से सरकार का यह फैसला मील का पत्थर साबित हो सकता है। सबसे बड़ी जरूरत तो इस बात की है कि इन योजनाओं पर काम पुख्ता तरीके से हो।

दोहरी प्रताड़ना

पंचायती राज व्यवस्था को इसलिए मजबूत बनाने पर जोर दिया गया था कि स्थानीय लोग भाई-चारे के साथ अपने मामलों का निपटारा खुद कर लिया करेंगे, अपनी समस्याओं का खुद समाधान तलाशेंगे और नौकरशाही के बेवजह दखल से मुक्त रह सकेंगे। मगर पंचायतें किस कदर पक्षपाती और अन्यायी होती गई हैं, इसके ढेर उदाहरण मौजूद हैं। पंचायतों पर काबिज लोग सरकारी धन की लूट तो करते ही हैं, जाति, धर्म, समुदाय के आधार पर नाइंसाफी भी करते हैं। इसका ताजा उदाहरण बिहार के गया जिले में एक ग्राम पंचायत का बलात्कार पीड़िता का सिर मुंड़वा कर गांव में घुमाना है। जब पीड़िता और उसके परिजन बलात्कार की शिकायत लेकर पंचायत के पास पहुंचे तो उसके सदस्यों ने उल्टा लड़की को ही दोषी ठहरा दिया कि वह गलत आरोप लगा रही है। इसके दंड स्वरूप लड़की का सिर मुंड़वा कर उसे गांव में घुमाया गया। इस मामले की सूचना मिलने पर स्थानीय थाने ने संबंधित लोगों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज की है। विचित्र है कि जिसे पीड़ित को न्याय दिलाना चाहिए, वह खुद अन्याय करता है।

हालांकि बिहार में यह अकेली घटना नहीं है, जिसमें किसी पंचायत ने दोषियों के खिलाफ खड़े होने के बजाय पीड़िता को दंडित करना न्यायसंगत समझा। कई घटनाओं में कुछ महिलाओं को खौलते तेल में हाथ डाल कर अपनी बेगुनाही साबित करने, सामूहिक पिटाई सहने, पत्थर मारे जाने जैसी दंड सुनाए जा चुके हैं। इन तमाम घटनाओं का बारीकी से अध्ययन करें तो लगभग सभी महिलाएं समाज के कमजोर तबके से रही हैं। छिपी बात नहीं है कि देश की तमाम पंचायतों पर ऊंची कही जाने वाली जातियों के दबंग लोग काबिज हैं। जिन सीटों पर आरक्षण की वजह से समाज के कमजोर और नीची कही जाने वाली जातियों के लोग सरपंच हैं, वे भी गांव के दबंग लोगों के मुताबिक ही काम करते देखे जाते हैं। इस तरह उनमें से भी ज्यादातर का कार्यव्यवहार ताकतवर लोगों के अनुसार होता है। फिर गांवों में नीची कही जाने वाली जातियों और आर्थिक रूप से कमजोर वर्गों की महिलाओं को किस कदर प्रताड़ना का शिकार होना पड़ता है, यह भी कोई छिपी बात नहीं है। जाहिर है, गया की ग्राम पंचायत ने भी इसी सामंती सोच के चलते पीड़िता को दोहरी प्रताड़ना से गुजरने को मजबूर किया।

ज्यादातर ग्राम पंचायतों में जातिवादी सोच गहरे तक जड़ जमाए हुए है। यही वजह है कि गांवों के विकास से जुड़ी योजनाओं का अधिकतर लाभ सरपंच अपनी जाति से जुड़े लोगों को पहुंचाते देखे जाते हैं। अपनी जाति के लोगों पर अगर किसी तरह का आरोप लगता है, तो सरपंच अक्सर उसे बचाने के लिए किसी भी हद तक जाते देखे जाते हैं। गया की पंचायत में भी पीड़िता चूंकि समाज के कमजोर तबके से थी और पंचायत में दबंग लोगों का कब्जा है, उन्होंने यह सोच कर ही एकतरफा फैसला किया कि वह उनके फैसले को चुनौती नहीं दे सकती। उसका परिवार पंचायत के फैसले को चुपचाप मान और चुप्पी साध लेगा। यह भी छिपी बात नहीं है कि गांवों के दबंग लोग किस तरह गरीब और कमजोर तबके की महिलाओं के साथ बदसलूकी करते हैं। ऐसे में जिन लोगों पर लड़की ने बलात्कार का आरोप लगाया, वे ताकतवर लोग रहे होंगे, छिपी बात नहीं है। जाहिर है, पंचायत ने उन्हें बचाने का प्रयास किया। पंचायतों के ऐसे रवैए के चलते ही पंचायती राज व्यवस्था की साख गिरी है।

कल्पमेधा

अत्याचार करने वाला उतना दोषी नहीं है, जितना उसे सहन करने वाला।
-बाल गंगाधर तिलक

कैंसर का कहर

मनीष वैद्य

बीते कई सालों से पर्यावरणविद और कृषि वैज्ञानिक चेतावनी दे रहे हैं कि जल्दी ही रासायनिक खाद और दवाओं को हटा कर जैविक खेती को नहीं अपनाया गया तो हालात गंभीर हो सकते हैं। फिर भी अब तक जैविक खेती को लेकर सिर्फ नारेबाजी ही हो रही है। हमारे यहां जैविक खेती की अवधारणा नई नहीं है, परंपरा से हमारे पूर्वज इसे करते रहे हैं। आसन्न चुनौतियों से निपटने का एकमात्र विकल्प है-अपनी जड़ों की ओर लौटना।

रासायनिक खादों और कीटनाशकों के इस्तेमाल ने पूरी दुनिया की धरती में खेती के उत्पादन, खाद्य सुरक्षा और मनुष्य की सेहत के लिए गंभीर खतरे खड़े कर दिए हैं। यहां तक कि शिशु के लिए अब अपनी मां का दूध भी सुरक्षित नहीं रह गया है। दूषित पेय और खाद्य पदार्थों के कारण मां का दूध भी प्रदूषित हो जाता है। यह बात विश्व खाद्य एवं कृषि संगठन की एक रिपोर्ट में कही गई है। भारत में भी हरित क्रांति के बाद उत्पादन बढ़ाने के नाम पर किसानों को परंपरागत खेती छोड़ कर कीटनाशकों और रासायनिक खादों की सलाह दी गई। इसका अंधाधुंध इस्तेमाल हुआ और जोरदार पैदावार से किसान मालामाल भी हुए, परंतु तब इसके दूरगामी दुष्परिणामों पर गौर नहीं किया गया था। पंजाब को इसकी प्रयोगशाला की तरह देखा गया लेकिन खेतों में रासायनिक खाद और कीटनाशकों ने यहां के पानी, हवा और जमीन को बुरी तरह प्रदूषित कर दिया और किसानों को कैंसर की बीमारी तोहफे में दे दी। पंजाब के बठिंडा से बीकानेर जाने वाली ट्रेन को कैंसर ट्रेन के नाम से जाना जाता है। इससे हर दिन दो सौ से ज़्यादा कैंसर के मरीज बीकानेर के कैंसर अस्पताल पहुंचते हैं। बीस स्टेशनों से गुजरते हुए यह हर दिन सवा तीन सौ किलोमीटर का सफर तय कर कैंसर मरीजों की बुझी हुई उम्मीदों को जिंदा करने की कोशिश करती है।

पंजाब के बाद देश के कुछ और हिस्से भी अब तेजी से कैंसर की चपेट आते जा रहे हैं। सबसे बड़ा खतरा उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, झारखंड, ओड़िशा और राजस्थान को है। देश में अब तक कैंसर मरीजों का आंकड़ा साढ़े बाईस लाख का है जो अगले बीस सालों यानी 2040 तक दुगना हो जाने की आशंका जताई जा रही है। कीटनाशकों के प्रयोग में ये राज्य देश के सर्वाधिक उपयोगकर्ताओं में शामिल हैं और यही कारण है कि अब इन राज्यों में कैंसर मरीजों का आंकड़ा तेजी से बढ़ रहा है। कैंसर से बीते साल सात लाख चौरासी हजार लोगों की मौत हो गई और साढ़े ग्यारह लाख नए मामले सामने आए थे।

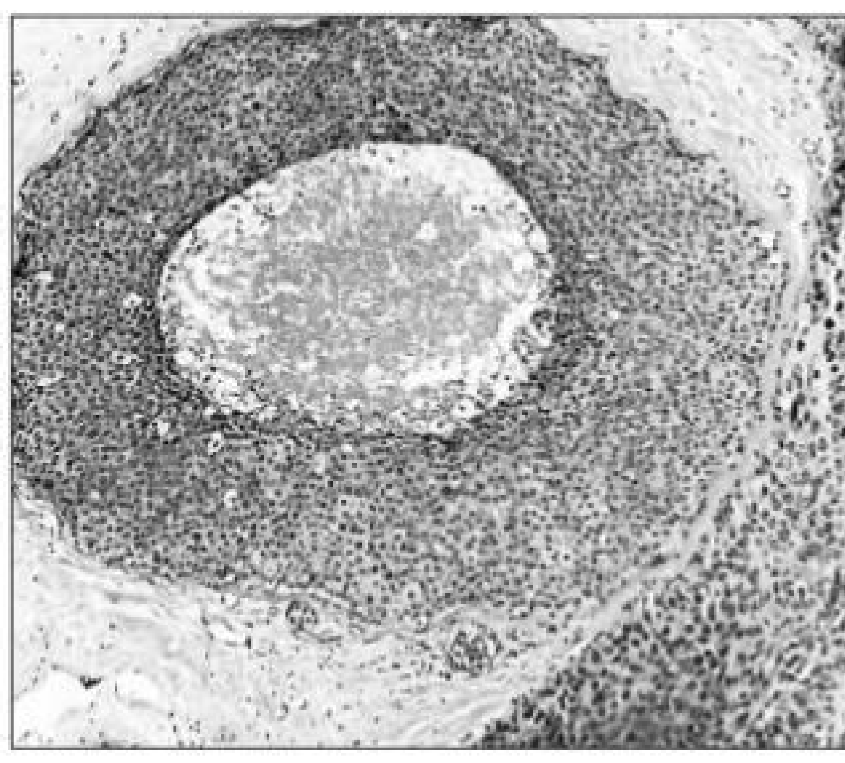

कभी अपनी खास तरह की समृद्ध खेती-बाड़ी और प्राकृतिक सुंदरता के लिए पहचाने जाने वाले इन आठ राज्यों में लोग अब कैंसर के खौफनाक कहर से रूबरू हो रहे हैं। ग्रामीण इलाकों में तो यह जानलेवा बीमारी तेजी से पांव पसाररही है। तंबाकू और बीड़ी पीने वालों को यह बीमारी आम है लेकिन यहां कई ऐसे लोग भी इस लाइलाज बीमारी के चंगुल में फंस चुके हैं जिन्होंने कभी तंबाकू का इस्तेमाल नहीं किया। विशेषज्ञों के मुताबिक इसका बड़ा कारण खेतों में इस्तेमाल होने वाले कीटनाशक हैं। मध्यप्रदेश में इंदौर के पास घने जंगलों और हरे-भरे खेतों के बीच बसा गांव हरसोला आलू और सब्जियों की पैदावार के लिए मशहूर है। यहां के कम स्टार्च वाले आलू की विदेशों सहित देशभर में मांग रहती है और इस आलू का उपयोग चिप्स बनाने वाली कंपनियां ज्यादा करती हैं। लेकिन चौंकाने वाला तथ्य यह है कि बीते सालों में यहां कैंसर के पैंतीस से ज्यादा मरीज चिन्हित हुए थे, जिनमें से पंद्रह की मौत हो चुकी है। यह साफहै कि इस गांव के ज्यादातर लोग किसान हैं और अपने खेतों में काम करते हैं। विशेषज्ञों का कहना है कि खेतों का कीटनाशक बारिश के पानी के साथ जमीन में पहुंचता है और जमीन के साथ जमीनी पानी के भंडार को भी प्रदूषित करता है। खेती-बाड़ी वाले गांवों में बीते चालीस सालों में रासायनिक खादों और कीटनाशकों का इस्तेमाल करीब चार से पांच गुना तक बढ़ा है। इसी ने हमारे परिवेश में जहर और हवा में कड़वाहट घोल दी है। ये बीमारियां इन्हीं की देन हैं।

कुछ सालों पहले तक पैंतालीस साल या इससे अधिक उम्र की महिलाओं में ही स्तन कैंसर की आशंका होती थी लेकिन अब पच्चीस से पैंतीस साल की महिलाओं में यह बीमारी अधिक देखने में आ रही है। भारत में हर आठ में से एक महिला को स्तन कैंसर की आशंका रहती है। स्तन कैंसर सायलेंट किलर है और इसका पता लगने में थोड़ी-सी भी देर हो जाए तो इसके ठीक होने की संभावना कम हो जाती है। यही वजह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में इससे मौतें ज्यादा होती हैं, क्योंकि वहां तक जांच व निदान की तकनीक और संसाधन अब तक सुलभ नहीं हो पाए हैं। इस बीमारी के फैलने का सबसे बड़ा कारण बदलता खानपान, प्रदूषण, जीवन शैली में बदलाव, नशा और अनुवांशिकी के साथ-साथ पानी, सब्जियों और अनाज में कीटनाशकों के अंश का पहुंचना है। संसाधनों और डाक्टरों की कमी, गरीबी और कुपोषण ने इस संकट को और बढ़ा दिया है।

रासायनिक खाद के इस्तेमाल में भी भारत पीछे नहीं है। बीते साठ सालों में यूरिया का बेतहाशा इस्तेमाल किया गया। 1960 में जहां नाइट्रोजन फर्टिलाइजर में यूरिया का अंश महज दस फीसदी था, जो अब बढ़ कर बयासी फीसद से ज़्यादा हो चुका है। फर्टिलाइजर एसोसिएशन ऑफ इंडिया के आंकड़ों के मुताबिक भारत हर साल एक सौ अड़तालीस लाख टन यूरिया की खपत करता है। हैरत की बात यह है कि अधिकांश खेतों की मिट्टी की जांच ही नहीं हुई है। ऐसे में बिना किसी आकलन के किसान अपनी मर्जी से यूरिया का इस्तेमाल करते हैं। उन्हें लगता है कि अब जमीन को यूरिया की आदत बन गई है और यदि वे यूरिया नहीं डालेंगे तो पैदावार काफी घट जाएगी। देश में सबसे ज्यादा यूरिया की खपत उत्तर प्रदेश, उत्तराखंड, पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र, बिहार और झारखंड हैं। पहले नंबर पर उत्तर प्रदेश है जो क्षेत्रफल की दृष्टि से काफी बड़ा है। लेकिन छत्तीसगढ़, उत्तराखंड और झारखंड का क्षेत्रफल काफी कम होने पर भी यूरिया की खपत काफी तेजी से बढ़ी है और इसमें हर साल बीस फीसद बढ़ोतरी हो रही है। यूरिया का तीस फीसद हिस्सा ही पौधों को बढ़ाता है, जबकि सत्तर फीसद नाइट्रोजन में बदल कर बारिश के पानी के साथ धरती में चला जाता है और भूजल भंडार और मिट्टी के साथ नदी-नालों में समा कर उन्हें प्रदूषित करता है। ऐसा पानी फसलों को नुकसान पहुंचाता है। यह पानी और इससे उगने वाला अन्न दोनों ही मनुष्य में गंभीर बीमारियों का कारण बनते हैं।

बीते कई सालों से पर्यावरणविद और कृषि वैज्ञानिक चेतावनी दे रहे हैं कि जल्दी ही रासायनिक खाद और दवाओं को हटा कर जैविक खेती को नहीं अपनाया गया तो हालात गंभीर हो सकते हैं। फिर भी अब तक जैविक खेती को लेकर सिर्फ नारेबाजी ही हो रही है। हमारे यहां जैविक खेती की अवधारणा नई नहीं है, परंपरा से हमारे पूर्वज इसे करते रहे हैं। आसन्न चुनौतियों से निपटने का एकमात्र विकल्प है-अपनी जड़ों की ओर लौटना। दुर्भाग्य से जिन गांवों के कोठार कभी अन्न के दानों से भरे रहते थे, आज वहां दवाइयां हैं, जहां के खेत सोना उगलते थे, आज वहां की हवा में दुर्गंध है। जहां कभी फसलें आने पर लोक गीत गूंजते थे, आज वहां भयावह खौफ और मौत का सन्नाटा है। जहां के लोग हाड़-तोड़ मेहनत करने के बाद भी हृष्ट-पुष्ट बने रहते थे, आज वे कंकाल की तरह नजर आते हैं और निराशा इतनी कि हर दिन अपनी मौत की घड़ियां गिनते रहते हैं। बीते तीस-चालीस सालों में हमने खेती की उपज बढ़ाने के नाम पर किन यमदूतों को हमारी खेती में शामिल कर लिया कि हमारी जान पर ही बन आई। भला ऐसी समृद्धि किस काम की जो मौत का तोहफा देती हो।

पूर्वाग्रहों के पाठ

अमित चमड़िया

दुनिया मेरे आगे

कक्षा तीन में एक शिक्षक ने दिवाली पर निबंध लिखवाया। उस निबंध की पहली पंक्ति कुछ इस प्रकार थी- 'दिवाली भारत देश का एक प्रमुख पर्व है।' यों यह पंक्ति हिंदी निबंध की किताबों में आमतौर पर लिखी हुई मिल जाती है, लेकिन जब ईद या गुरुपर्व पर निबंध लिखवाए जाते हैं तो पंक्ति कुछ इस प्रकार होती है- 'ईद मुसलिम समुदाय का प्रमुख त्योहार है या गुरुपर्व सिख धर्म को मानने वाले लोगों द्वारा मनाया जाता है।' मुझे भी अपने स्कूल में इन त्योहारों के बारे कुछ इसी तरह की बात सिखाई गई थी। आज भी लाखों बच्चे इसी तरह के निबंधों की किताब पढ़ रहे हैं या उनकी कक्षा में उनके शिक्षक द्वारा इसी तरह की पंक्तियां इन त्योहारों के बारे लिखवाई जा रही हैं। कक्षा तीन के बच्चों के लिए इसमें कुछ भी असामान्य जैसा नहीं है, पर हम 'स्वाभाविक तरीके' से या 'सहजता' से बहुत कुछ बच्चों को गलत बातें बता देते हैं। त्योहारों के बारे में इस तरह की बातें कुछ इसी तरह की हैं।

भारत बहुलतावादी संस्कृति का परिचायक है। जब हम दिवाली को भारत देश का प्रमुख पर्व बताते हैं तो हम ईद और गुरुपर्व को भी क्यों नहीं भारत के एक प्रमुख त्योहार के रूप स्वीकार करते हैं। अगर हम एक पर्व को किसी खास धर्म से जोड़ते हैं तो फिर यही काम दिवाली पर निबंध लिखते समय क्यों नहीं होता है! इस पर्व के संदर्भ पर हम यह नहीं लिखते हैं कि दिवाली हिंदुओं का एक प्रमुख त्योहार है। यह भी तथ्य है कि समूचे देश में हर जगह दिवाली नहीं मनाई जाती है। हमारे स्कूल की किताबें कई बार हमें प्रत्यक्ष या फिर परोक्ष रूप से भेदभाव करना सिखाती हैं। आदिवासी समुदाय के पर्व, जैसे- सरहुल, भगोरिया आदि के बारे में जब हम पढ़ते हैं तो यह क्यों नहीं बताया जाता है कि ये उत्सव भी भारत देश के प्रमुख त्योहार हैं? क्यों इस पर्व को केवल आदिवासी समुदाय का पर्व बताया जाता है? इस बात से किसी को इनकार नहीं होगा कि भारत देश केवल हिंदू धर्म को मानने वालों का ही नहीं है, बल्कि तमाम दूसरे धर्मों और समुदायों का भी है। आदिवासी बच्चे या गैर-हिंदू बच्चों की मनःस्थिति के बारे में सोचने की जरूरत है कि जब उनकी ही कक्षा में उनके त्योहार को देश का त्योहार नहीं बताया जाता है और किसी खास त्योहार को देश का त्योहार बताया जाता है तो उन्हें कैसा महसूस होता होगा।

एक निजी स्कूल की कक्षा आठ में पढ़ने वाले एक छात्र से मैंने पूछा कि तुम्हारा स्कूल क्यों बंद है, तो उसका जवाब था-'मुझे नहीं मालूम।' मेरे बहुत जोर देने पर उसने कहा कि मुसलिम समुदाय का कोई त्योहार है, इसलिए बंद है। प्रसंगवश यह बताना जरूरी है कि स्कूल ईद के अवसर पर बंद था। अब इस तरह के निबंध को बच्चे पढ़ेंगे तो उस छात्र की तरह अन्य को भी स्कूल के बंद होने का कारण नहीं पता होगा।

मामला केवल किताबों तक ही सीमित नहीं है। हाल ही में झारखंड की राजधानी रांची के एक पुलिस थाने में मेरा जाना हुआ। वहां पता चला कि थाने में अभी-अभी पूर्णिमा का हवन समाप्त हुआ है। कैसे हम सरकारी प्रतिष्ठानों में किसी खास धर्म को इस तरह से मनाने की इजाजत देते हैं। जबकि भारत के संविधान में यह बात स्पष्ट रूप से दर्ज है कि राज्य का अपना कोई धर्म नहीं होगा। तो किसी खास धर्म की पहचान को मुख्य बना कर पेश करना क्या संविधान का उल्लंघन नहीं है? संविधान के उल्लंघन पर किस-किस तरह के कानूनी प्रावधान लागू होते हैं?

हम अक्सर इस बात को टेलीविजन पर देखते हैं कि शिलान्यास आदि के मौके पर या कार्यक्रमों में सरकारी अधिकारी या नेता हिंदू रीति-रिवाज से पूजा करते हैं। दूसरी ओर, वही सभी स्तंभों की ओर से धर्मनिरपेक्ष होने का दावा भी किया जाता है। क्या ऐसी स्थिति में अन्य धर्मों के प्रति समान स्तर पर सम्मान की भावना और व्यवहार की उम्मीद की जा सकती है? निजी मान्यताओं से कुछ भी बाधित नहीं होना चाहिए। एक उदाहरण दिल्ली के पटेल चौक मेट्रो स्टेशन पर देखा जा सकता है, जहां 'भगवद्गीता' किताब को लोगों के देखने के लिए रखा गया है। क्या सरकार और उसकी किसी एजेंसी के द्वारा एक खास धर्म के प्रति इस तरह के सार्वजनिक व्यवहार अन्य समुदायों के बीच बहिष्करण का अहसास नहीं करेंगे? जब इस तरह की सामग्रियां हम बचपन में ही पढ़ने लगते हैं तो बड़े होने पर वही भेदभाव रोजमर्रा की जिंदगी में शामिल होना स्वभाविक है। हमारे स्कूल की किताबों में बड़े बदलाव की जरूरत है और यह बात बच्चों को बतानी होगी कि क्यों निबंधों में इस तरह की पंक्तियां उचित नहीं हैं। तभी शायद हम सही शिक्षा बच्चों को दे पाएंगे और सही अर्थों में एक मजबूत भारत का पाठ तैयार कर पाएंगे।

संकीर्ण सोच

हाल में जम्मू-कश्मीर पर सरकार के फैसले के बाद भारत के एक बड़े वर्ग की अजीबोगरीब प्रतिक्रिया देखने को मिली। न केवल आम लोग बल्कि नेताओं ने भी ऐसी प्रतिक्रियाएं दीं। मसलन, एक मुख्यमंत्री ने कहा कि अब शादी के लिए लड़कियां बिहार के बदले जम्मू-कश्मीर से मंगा ली जाएंगी। एक भाजपा विधायक ने कहा कि देश के मुसलमानों को खुश होना चाहिए कि अब उन्हें शादी के लिए आसानी से गोरी लड़कियां कश्मीर से मिल जाएंगी। लोगों के एक वर्ग ने कहा कि अब कश्मीर में जमीन लेकर वहां के संपत्ति पर कब्जा करेंगे। कश्मीर में फोन लाइन और मोबाइल नेटवर्क बंद होने के कारण होने वाली समस्या पर उन्मादी लोगों ने कहा कि कश्मीर के लोग तो बैलट पेपर पर चुनाव कराना चाहते थे तो मोबाइल फोन बंद होने पर खत का उपयोग क्यों नही कर रहे। ये सारी बातें काफी चटकारे लेकर सुनाई और प्रचारित की जाती रहीं और इसे मजाक कहा गया।

इस तरह की घटनाएं और प्रतिक्रियाएं समाज में और देश में सिर्फ वैमनस्य ही पैदा करती हैं और देश का माहौल खराब होता है। जो लोग इस तरह के अनर्गल और आपत्तिजनक बयान दे रहे हैं या सोशल मीडिया पर इस तरह का प्रचार कर रहे हैं उन्हें जरा विवेक से काम लेना चाहिए। अगर अपने ही देश में रहने वालों के खिलाफ हम इस तरह की बातें करेंगे तो इससे गलत संदेशा जाएगा। हमें यह समझना होगा कि कश्मीर के लोग भी हमारे हैं, केवल भूभाग पर अधिकार से अपनत्व नहीं आता और इतिहास इसका साक्षी है।

● *विश्वामित्र राज, राजगीर (बिहार)*

मदद और सवाल

भारतीय रिजर्व बैंक के चौरासी साल के इतिहास में पहली बार अपने आरक्षित कोष से एक लाख छिहत्तर हजार करोड़ रुपए निकाल कर केंद्र सरकार को देने का फैसला किया है, ताकि देश की डगमगाती आर्थिक स्थिति को दुरस्त किया जा सके। हालांकि सरकार रिजर्व बैंक से पैसे लेने के लिए लंबे समय से दबाव बना रही थी। देश के कुछ बड़े अर्थशास्त्रियों का मानना है कि इस तरह के कदम से भारतीय रिजर्व बैंक की साख पर बहुत बुरा असर पड़ेगा। सवाल तो यह है कि इस बात की क्या गारंटी है कि पिछले पांच साल में भारतीय अर्थव्यवस्था जिस तरह से तहस-नहस हुई है, वह इस तरह की मदद से पटरी पर आ जाएगी। इस आशंका से इंकार नहीं किया जा सकता कि कहीं भारत भी दूसरा अर्जेंटीना न बन जाए।

● *निर्मल कुमार शर्मा, गाजियाबाद*

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

सही फैसला

फिलहाल अर्थव्यवस्था मंदी के दौर से गुजर रही है। इसलिए रिजर्व बैंक की ओर से वित्तीय रूप से सरकार के हाथ मजबूत करने की पहल को उपयुक्त समय पर उठाया गया कदम ही कहा जाएगा। यदि अर्थव्यवस्था की सुस्ती और गहराने के बाद रिजर्व बैंक की ओर से सरकार को 1,76,051 करोड़ रुपए हस्तांतरित करने का फैसला किया जाता तो शायद अनुकूल नतीजे हासिल करने में मुश्किल होती। रिजर्व बैंक के इस फैसले के बाद देश के कारोबार जगत के साथ-साथ आम जनता के बीच तो एक अच्छा संदेश जाएगा ही, वैश्विक निवेशकों को भी इसका एहसास होगा कि भारत ने आर्थिक सुस्ती को दूर भगाने के लिए कमर कस ली है। रिजर्व बैंक से उम्मीद से अधिक राशि मिलने से केंद्र सरकार को केवल खर्च बढ़ाने में ही मदद नहीं मिलेगी, बल्कि चालू वित्त वर्ष के शेष समय में बुनियादी ढांचे से लेकर सामाजिक क्षेत्र तक में खर्च बढ़ा कर मांग को बल देने में भी सहायता मिलेगी।

● *हेमंत कुमार, गोराडीह (भागलपुर)*

वाणी पर संयम बरतें नेता

जागरूक मीडिया के युग में अब राजनेताओं को जरा संभल कर काम करने और सतर्क होकर बात करने की आदत डाल लेनी चाहिए। किसी भी मामले में उतावलेपन और उत्तेजित होने से बचना चाहिए। कहीं ऐसा न हो कि जुबान ही लड़खड़ा जाए और अपना आपा खो बैठें। मजाक या ठिठोली आपस में वे भले ही व्यक्तिगत रूप से कर लें लेकिन सार्वजनिक रूप से उन्हें इन सब बातों से परहेज रखना चाहिए। एक बात और है। दीवारों के भी कान ही नहीं आंख-नाक सब होते हैं। मीडिया में व्यक्ति न सिर्फ सुनता और देखता है बल्कि हर बारीकी को मोबाइल कैमरे से कैद कर लेता हैं। राजनीतिज्ञ किसी भी दल के क्यों न हों आखिर वे हैं तो राजनेता। फिर कम से कम जवाबदार नेता, मंत्री, शासक, प्रशासक को तो बहुत ही सूझ-बूझ से काम लेना चाहिए। यह इसलिए कहने में आ रहा है कि पिछले काफी समय से देखने, सुनने और पढ़ने में आ रहा है कि नेताओं के बोल और व्यवहार दोनों ही कभी-कभी इतने निम्नस्तरीय हो जाते हैं कि उन्हें न तो बयां किया जा सकता है और न ही प्रकाशित और प्रसारित। सरकार और अन्य पार्टी प्रमुखों को ही ये सब बातें संज्ञान में लेनी पड़ेंगी और कठोर कदम उठाने पड़ेंगे, तभी उनकी गिरती छवि को रोका जा सकता है।

● *शकुंतला महेश नेनावा, इंदौर*

कुछ तो सबक लें

प्रज्ञा ठाकुर राजनीति के लिए नहीं बनी हैं। पिछली जिंदगी को लेकर उनकी मजबूरी और आदतें न तो उन्हें संयमी सांसद बनने दे रही हैं, न ही साध्वी रहने दे रही हैं। वे न घर की रहीं न घाट की। जब भी वे बोलेंगी, अपने और पार्टी दोनों के लिए संकट खड़ा करती रहेंगी। प्रत्येक दल में ऐसे लोग हैं जो पार्टी लाईन की परवाह किए बिना विवेक विचार आचरण कर संकट खड़ा करते रहते हैं और पार्टी नेतृत्व जैसे-तैसे सफाई देता रहता है। ऐसे माहौल में यदि आप किसी एक पर उंगली उठाते हैं तो चार आपके अपने पर उठती नजर आती हैं।

● *राधेश्याम तांबट, इंदौर*